जन आन्दोलनों का उदय

जन आन्दोलनों की प्रकृति

हमारे लोकतंत्र की नींव ही जन आंदोलन के बीच पनपी है। 19वीं और 20वीं सदी के आरम्भिक वर्षों में भारत में किसान आंदोलन, सामाजिक आंदोलन, राजनैतिक आंदोलन और अन्य कई पर्यावरण सम्बन्धी आंदोलन अपने अधिकारों की मांग के लिए दिनों–दिन बढ़ते जा रहे थे। इसमें न केवल निम्न वर्गीय लोग ही शामिल हुए अपितु मध्यम वर्गीय एवं उच्च वर्गीय लोगों ने भी इसमें बढ़–चढ़ कर भाग लिया और आंदोलनों द्वारा अपने अधिकारों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया।

चिपको आंदोलन

सत्तर के दषक में बांजों के साथ 'हिम पुत्रियों की लरकार, वन नीति बदले सरकार, वन जागे वनवासी जागे।' रैंणी गांव चमोली के जंगलों में गूंजे ये नारे आज भी सुनाई दे रहे हैं। इस आंदोलन की शुरूआत 1972 से शुरू वनों की अंधाधुंध एवं अवैध कटाई को रोकने के मुद्दे से 1974 में चमोली जिले में गोपेश्वर नामक स्थान पर एक 23 वर्षीय विधवा महिला गौरा देवी द्वारा की गयी थी। इस आंदोलन के तहत वृक्षों की सुरक्षा के लिए ग्रामीणवासियों द्वारा वृक्षों को पकड़कर चिपक जाया जाता था। इसी कारण इसका नाम चिपको आंदोलन पड़ गया। चिपको आंदोलनकारी महिलाओं द्वारा 1977 में एक नारा दिया गया जो काफी प्रसिद्ध हुआ। वह नारा था ''क्या है इस जंगल के उपकार मिट्‌टी, पानी और बयार, जिंदा रहने के आधार''।

चिपको आंदोलन को अपने शिखर पर पहुंचाने में पर्यावरणविद् सुन्दर लाल बहुगुणा और चण्ड़ी प्रसाद भट्‌ट ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाद में इस आंदोलन का कार्यक्षेत्र समग्र रूप से पर्यावरण की रक्षा हो गया तथा सुन्दर लाल बहुगुणा जी ने ''हिमालय बचाओ, देश बचाओ,'' का नारा दिया।

दल आधारित आंदोलन

जन आंदोलन कभी सामाजिक तो कभी राजनीतिक आंदोलनों के रूप में उभर कर सामने आते हैं। ब्रिटिश औपनिवेशिक दौर में सामाजिक–आर्थिक मसलों पर भी चितंन–मंथन चला, जिससे अनेक स्वतंत्र सामाजिक आंदोलनों का जन्म हुआ जैसे–जाति प्रथा विरोधी आंदोलन, किसान सभा आंदोलन और मजदूर संगठनों के आंदोलन। ये आंदोलन 20वीं सदी के शुरूआती दशकों में अस्तित्व में आए।

कुछ ऐसे आंदोलन जो आजादी के बाद भी चलते रहे, मुम्बई, कोलकाता और कानपुर जैसे बड़े शहरों के औद्योगिक मजदूरों के बीच मजदूर संगठनों के आंदोलन का बड़ा जोर था। सभी बड़ी पार्टियों ने इस तबके के मजदूरों को लामबंद करने के लिए अपने–अपने मजदूर संगठन बनाये। आजादी के बाद के शुरूआती सालों में आंध्र प्रदेष के तेलंगाना क्षेत्र के किसान कम्युनिस्ट पार्टियों के नेतृत्व में लामबंद हुए। इन्होंने काश्तकारों के बीच जमीन के पुनर्वितरण की मांग की।

आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा बिहार के कुछ भागों में किसान तथा खेतीहर मजदूरों ने मार्क्सवादी–लेनिनवादी कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं के नेतृत्व में अपना विरोध जारी रखा।

राजनीतिक दलों से स्वतंत्र आंदोलन

दलित पैंथर्स

जनमानस की दृष्टि में दलित शब्द भारतीय समाज के वंचित वर्ग की जातियों–उपजातियों की सामुदायिक पहचान के रूप में भले ही जाना जाता हो लेकिन ऐतिहासिक सच तो यह है कि दलित विमर्श एवं साहित्य के संदर्भ में दलित शब्द स्वयं में चेतना का प्रतिरूप है। भारत में सत्तरवें दशक के शुरूआती सालों से शिक्षित दलितों की पहली पीढ़ी ने अनेक मंचों से अपने हक की आवाज उठायी। इनमें ज्यादातर शहर की झुग्गी–बस्तियों में पलकर बड़े हुए इस समुदाय ने हमारे समाज में लम्बे समय तक क्रूरतापूर्ण जातिगत अन्याय को भुगता है।

दलित समुदाय को उनकी पहचान दिलाने के लिए डा0 भीमराव अम्बेडकर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1924 में डा0 भीमराव अम्बेडकर ने दलितों के उत्थान के लिए बहिष्कृत हितकारिणी सभा का गठन किया। दलित हितों की दावेदारी के इसी क्रम में दलित पैंथर मुम्बई, महाराष्ट्र में 1972 में गठित एक सामाजिक–राजनीतिक संगठन है, जिसने बाद में एक बड़े आंदोलन का रूप ले लिया। नामदेव ढसाल, राजा ढाले व अरूण कांबले इसके आरंभिक व प्रमुख नेताओं में हैं। इसका गठन अफ्रीकी, अमेरिकी ब्लैक पैंथर आंदोलन से प्रभावित होकर किया गया।

महाराष्ट्र के विभिन्न इलाकों पर बढ़ रहे अत्याचार से लड़ना दलित पैंथर्स की अन्य मुख्य गतिविधि थी। सरकार ने दलितों पर हो रहे अत्याचारों एवं भारतीय संविधान के अनुच्छेद–17 की अवहेलना के परिणामस्वरूप 1989 में एक व्यापक कानून बनाया। इस कानून के अन्तर्गत दलितों पर अत्याचार करने वालों के लिए कठोर दण्ड का प्रावधान किया गया। दलित पैंथर्स का विचारात्मक अजेंड़ा जाति प्रथा को समाप्त करना तथा भूमिहीन गरीब किसान, शहरी औद्योगिक मजदूर और दलित सहित सारे वंचित वर्गों का एक संगठन खड़ा करना था। अन्ततः बैकवर्ड एंड माइनॉरिटी एम्पलाईज फेडरेशन(बामसेफ) ने दलित पैंथर्स की अवनति से उत्पन्न रिक्त स्थान की पूर्ति की।

भारतीय किसान यूनियन (बी0के0यू0)

सत्तर के दशक से भारतीय समाज में कई तरह के असंतोष पैदा हुए। समाज के निम्न तबके के लोगों का सरकार व राजनीतिक दलों से मनमुटाव चलता रहा। अस्सी के दशक का कृषक इसका एक उदाहरण है, जब अपेक्षाकृत धनी किसानों ने सरकार की नीतियों का विरोध किया।

आंदोलन का उदय

1988 के जनवरी में उत्तर–प्रदेश के एक शहर मेरठ से लगभग 20000 किसान जमा हुए। ये किसान सरकार द्वारा बिजली की दर में की गई बढ़ोत्तरी का विरोध कर रहे थे। किसान जिला समाहर्ता के दफ्तर के बाहर तीन हफ्तों तक डेरा डाले रहे। इसके बाद इनकी मांग मान ली गई। किसानों का यह बड़ा अनुशासित धरना था और जिन दिनों वे धरने पर बैठे थे उन दिनों आस–पास के गांवों से निरन्तर राशन–पानी मिलता रहा। धरने पर बैठे किसान, बी0के0यू0 के सदस्य थे। बी0के0यू0 पश्चिमी उत्तर–प्रदेश और हरियाणा के किसानों का एक अग्रणी संगठन था।

सरकार द्वारा 1990 के दशक में अपनाई गई उदारीकरण की नीति के परिणामस्वरूप भारतीय किसान यूनियन ने भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण से नकदी फसल के बाजार को हुई हानि को दूर करने के लिए गन्ने और गेहूं के सरकारी खरीद मूल्य में बढ़ोत्तरी करने, कृषि उत्पादों के अन्तर्राज्यीय आवाजाही पर लगी पाबंदियॉ हटाने, समुचित दर पर गारंटीशुदा बिजली आपूर्ति करने, किसानों के बकाया कर्ज माफ करने तथा किसानों के लिए पेंशन का प्रावधान करने की मांग की।

ऐसी मांगे देश के अन्य किसान संगठनों ने भी उठाई। महाराष्ट्र के शेतकारी संगठन ने किसानों के आंदोलन को 'इंडिया' की ताकतों (शहरी औद्योगिक क्षेत्र), 'भारत'(ग्रामीण कृषि क्षेत्र) का संग्राम करार दिया।

भारतीय किसान यूनियन की विशेषताऐं

सरकार पर अपनी मांगों को मानने के लिए दबाव डालने में बी0के0यू0 ने रैली, धरना प्रदर्शन और जेल भरो अभियान का सहारा लिया। इन कार्यवाहियों में पश्चिमी उत्तर–प्रदेश और उसके आस–पास के इलाके के गांवों के हजारों किसानों ने भाग लिया। देश की राजधानी दिल्ली में भी बी0के0यू0 ने रैली का आयोजन किया। इस संगठन ने जातिगत समुदायों को आर्थिक मसले पर एकजुट करने के लिए जाति–पंचायत की परम्परागत संस्था का उपयोग किया। 1990 के दशक के शुरूआती सालों तक बी0के0यू0 ने अपने को सभी राजनीतिक दलों से दूर रखा लेकिन वर्तमान में यह राजनीति में दबाव समूह के रूप में अपनी सक्रिय भूमिका निभा रहा है।

हरित क्रांति

सरकार ने तीसरी पंचवर्षीय योजना की असफलता के बाद और भारत–चीन युद्ध 1962 तथा भारत–पाकिस्तान युद्ध 1965 के द्वारा हुई हानि की भरपाई के लिए कृषि की एक नई रणनीति अपनाई, इसे हरित क्रांति का नाम दिया गया, यह एक कृषि सुधार कार्यक्रम था। 1966–69 में जब भारत ने हरित क्रांति की नीति अपनाई तो इससे पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर–प्रदेश के किसानों को फायदा होना शुरू हो गया। परिणामस्वरूप गेहूं, चावल और दालों के उत्पादन में वृद्धि हुई, तथा गन्ना और गेहूं मुख्य नकदी फसल बने।

सकारात्मक परिणाम–

1– हरित क्रांति से कृषि में आधुनिक उपकरणों तथा संयंत्रों के उपयोग से पैदावार को बढ़ाया गया।

2– नकदी फसलों की पैदावार को भी बढ़ाकर आर्थिक क्षेत्र में वृद्धि की गई।

नकारात्मक परिणाम–

1– हरित क्रांति का प्रभाव केवल कुछ ही फसलों तक सीमित रहा।

2– हरित क्रांति का प्रभाव देश के कुछ ही हिस्सों तक सीमित रहा और छोटे क्षेत्र के कृषक भी इससे अछूते रहे।

असम आंदोलन

आंदोलन का कारण–

सन् 1979 से 1985 तक चला असम आंदोलन बाहरी लोगों के खिलाफ चले आंदोलनों का सबसे अच्छा उदाहरण है। असमी लोगों को संदेह था कि बांग्लादेश से आकर बहुत से मुस्लिम आबादी असम में बसी हुई है। लोगों के मन में यह भावना थी कि इन बाहरी लोगों को पहचानकर उन्हें अपने देश नहीं भेजा गया तो स्थानीय जनता अल्पसंख्यक हो जाएगी। असम में तेल, चाय और कोयला जैसे प्राकृतिक संसाधनों की मौजूदगी के बावजूद व्यापक गरीबी थी। यहां की जनता का मानना था कि असम के प्राकृतिक संसाधन बाहर भेजे जा रहे हैं और असमी लोगों को कोई फायदा नहीं हो रहा है।

1979 में ऑल असम स्टूडेण्ट्स यूनियन (आसू–AASU) ने विदेशियों के विरोध में एक आंदोलन चलाया। 'आसू' एक छात्र संगठन था और इसका जुड़ाव किसी भी राजनैतिक दल से नहीं था। 'आसू' का आंदोलन अवैध प्रवासी, बंगाली और अन्य लोगों के दबदबे तथा मतदाता सूची में लाखों अप्रवासियों के नाम दर्ज कर लेने के खिलाफ था। आंदोलन की मांग थी कि 1951 के बाद जितने भी लोग असम में आकर बसे हैं उन्हें असम से बाहर भेजा जाए। इस आंदोलन को पूरे असम में समर्थन मिला। आंदोलन के दौरान हिंसक और त्रासद घटनाएँ भी हुई। बहुत से लोगों को जान गॅवानी पड़ी और धन सम्पत्ति का नुकसान हुआ। आंदोलन के दौरान रेलगाड़ियों की आवाजाही तथा बिहार स्थित बरौनी तेलशोधन कारखाने की तेल आपूर्ति को रोकने की कोशिश की गई।

कुछ सालों के बाद राजीव गांधी के नेतृत्व वाली सरकार ने 'आसू' के नेताओं से बातचीत की। इसके परिणामस्वरूप 1985 में एक समझौता हुआ। समझौते के अन्तर्गत तय किया गया कि जो लोग बांग्लादेश युद्ध के दौरान अथवा उसके बाद के सालों में असम आए हैं उनकी पहचान की जाएगी ओर उन्हें वापस भेजा जाएगा। आंदोलन की कामयाबी के बाद 'आसू' और असमगण संग्राम परिषद ने साथ मिलकर

अपने को एक क्षेत्रीय राजनैतिक पार्टी के रूप में संगठित किया। इस पार्टी का नाम 'असम गण परिषद' रखा गया। असम गण परिषद 1985 में इस वायदे के साथ सत्ता में आई थी कि विदेशी लोगों की समस्या को सुलझा लिया जाएगा और एक 'स्वर्णिम असम' का निर्माण किया जाएगा।

रोहिंग्या मुसलमानों की समस्या–

म्यांमार की बहुसंख्यक आबादी बौद्ध है। म्यांमार में एक अनुमान के मुताबिक 10 लाख लोग रोहिंग्या मुसलमान हैं। इनके बारे में कहा जाता है कि वे मुख्य रूप से अवैध बांग्लादेशी प्रवासी हैं। सरकार ने इन्हें नागरिकता देने से इंकार कर दिया है हालांकि ये म्यांमार में पीढ़ियों से रह रहे हैं। रखाइन स्टेट में 2012 से सांप्रदायिक हिंसा जारी है। इस हिंसा में बड़ी संख्या में लोगों की जानें गई हैं और एक लाख से ज्यादा लोग विस्थापित हुए हैं। बड़ी संख्या में रोहिंग्या मुसलमान आज भी जर्जर कैंपों में रह रहे हैं। रोहिंग्या मुसलमानों को व्यापक पैमाने पर भेदभाव और दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ रहा है। अतः ये अपने लिए एक सुरक्षित देश की तलाश में भारत के पूर्वोत्तर इलाकों की तरफ बढ़ते जा रहे हैं अतः पूर्वोत्तर में वर्तमान में यह एक बड़ी समस्या का रूप लेती जा रही है। सरकार इस क्षेत्र की सुरक्षा को लेकर विशेष नियम भी बना रही है।

किसान आंदोलन

भारत में प्राचीनकाल से ही विदेशी आक्रमण होते रहे हैं तथा संपूर्ण मध्यकाल में मुस्लिम शासकों एवं विदेशियों का शासन भी रहा, लेकिन कृषकों पर अत्याचार के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं। ब्रिटिश शासन के दौरान अंग्रेजों ने समय–समय पर भूराजस्व की विभिन्न प्रणालियां आरम्भ की। जिसने कृषकों ने निरन्तर बढ़ते हुए लगान एवं जमीन से बेदखली की घटनाओं को अंजाम दिया, जिसे देखते हुए कृषकों ने विभिन्न मुद्दों पर आंदोलन करना प्रारम्भ कर दिया। जो निम्न प्रकार से हैं–

1– नील विद्रोह(1859–60)

1957 के विद्रोह के पश्चात् प्रथम संगठित विद्रोह बंगाल में नील की खेती करने वाले किसानों द्वारा हुआ। अंग्रेज अधिकारी बंगाल तथा बिहार के रैयतों से भूमि लेकर बिना पैसा दिये ही रैयतों को नील की खेती करने के लिए विवश करते थे, जबकि किसान अपनी उपजाऊ जमीन पर चावल की खेती करना चाहते थे। इस आंदोलन की शुरूआत 1859 में बंगाल के नादिया जिले के गोविन्दपुर गांव में दिगम्बर विश्वास व विष्णु विश्वास ने किया।

दीनबंधु मित्र ने अपनी पुस्तक नील दर्पण में इसका उल्लेख किया है। हिन्दू पैट्रियाट के सम्पादक हरीश चन्द्र मुखर्जी ने नील आंदोलन के संदर्भ में कार्य किये।

किसानों की एकजुटता के कारण 1860 के अंत तक बंगाल में नील की खेती पूरी तरह से बंद कर दी गयी।

2– <u>तिभागा आंदोलन(1946–50)</u>

यह आंदोलन बंगाल में ही केंद्रित था। इसकी शुरूआत त्रिपुरा के हसनाबाद से हुई। यहां से यह बंगाल में नोवाखली तक फैल गया। इस आंदोलन के प्रमुख नेता कम्पाराम सिंह एवं भवन सिंह थे। इस आंदोलन में बटाईदार किसानों ने निर्णय किया कि वे फसल का 2/3 हिस्सा लेंगे और जमींदारों को 1/3 हिस्सा ही देंगे। बंटवारे की इसी अनुपात के कारण इसे तिभागा आंदोलन कहते हैं। सितम्बर 1946 को बंगाल के प्रांतीय किसान सभा ने तिभागा संबंधी 'प्लाउड कमीशन' की सिफारिश को लागू करने के लिए इस आंदोलन को शुरू किया था।

3– <u>चम्पारन में नील सत्याग्रह (1917)</u>

भारत में महात्मा गांधी के नेतृत्व में किया गया प्रथम किसान सत्याग्रह चम्पारन सत्याग्रह था। महात्मा गांधी ने अपना प्रथम सत्याग्रह का प्रयोग दक्षिण अफ्रीका में उस कानून के विरूद्ध किया जिसके अंतर्गत प्रत्येक भारतीय को पंजीकरण प्रमाण पत्र लेना जरूरी था। चम्पारन(बिहार) का मामला बहुत पुराना था। 19वीं सदी के आरम्भ में गोरे बगान मालिक जिस व्यवस्था के अंतर्गत किसानों से नील की खेती करवाते थे, उसे तिनकठिया प्रणाली कहते थे। इसके अंतर्गत किसानों को अपनी जमीन के 3/20वें हिस्से में नील की खेती करना अनिवार्य था।

19वीं सदी के अंतिम दिनों में जर्मनी में कृत्रिम रासायनिक नील के आविष्कार के फलस्वरूप प्राकृतिक नील की मांग बाजार में कम हो गयी। इसके चलते चम्पारन के यूरोपीय बागान मालिक नील की खेती बंद करने के लिए मजबूर हो गए। 1916ई0 में लखनऊ में कांग्रेस अधिवेशन के दौरान चम्पारन के एक किसान राजकुमार शुक्ल ने महात्मा गांधी को चम्पारन आने के लिए आमंत्रित किया। अंत में सरकार ने विवश होकर किसानों की स्थिति का सर्वेक्षण करने के लिए चम्पारन एग्रेरियन कमेटी का गठन किया जिसमें महात्मा गांधी स्वयं एक सदस्य थे। इस कमेटी की सलाह पर सरकार ने तिनकठिया पद्धति को समाप्त कर दिया और किसानों से अवैध रूप से वसूले गए धन का 25 प्रतिशत भाग वापस कर दिया।

4– <u>बारदोली सत्याग्रह(1928)</u>

गुजरात का बारदोली सत्याग्रह पूरे राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान सबसे संगठित, व्यापक व सफल कृषक आंदोलन था। कालिपराज (काले लोग) बारदोली तालुका की एक जनजाति थी जिसकी स्थिति दयनीय थी। हाली पद्धति (बंधवा मजदूरी) के अंतर्गत उन्हें उच्च जातियों के यहां पुश्तैनी मजदूर के रूप में कार्य करना पड़ता था। कुंवरजी मेहता व केशवजी गणेश ने कालिपराज साहित्य का सृजन किया तथा हॉली पद्धति के विरूद्ध आवाज उठायी। 1929 के बाद हर वर्ष कालिपराज सम्मेलन का आयोजन होने लगा। 1927 में आयोजित कालिपराज सम्मेलन के अध्यक्ष महात्मा गांधी थे।

महात्मा गांधी ने कालिपराज का नाम बदलकर रानीपराज (जंगल के वासी) कर दिया। महात्मा गांधी के सचिव महादेव देसाई ने अपनी पुस्तक 'स्टोरी ऑफ बारदोली' में कालिपराजों को अहिंसक, निश्छल और कानून मानने वाला कहा है। बारदोली सत्याग्रह के समय भारत के वायसराय लार्ड इरविन थे। बल्लभ भाई पटेल ने 4 फरवरी 1928 को बारदोली किसान सत्याग्रह का नेतृत्व संभाला। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बल्लभ भाई पटेल स्वतंत्र भारत के प्रथम उप–प्रधानमंत्री बने। महिलाओं ने भी इस आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बारदोली सत्याग्रह के दौरान यहां की महिलाओं की ओर से महात्मा गांधी ने बल्लभ भाई पटेल को सरदार की उपाधि प्रदान की।

ताड़ी विरोधी आंदोलन

आंध्र प्रदेश की महिलाओं ने अपने आस–पड़ोस में मदिरा की बिक्री पर पाबंदी को लेकर एक स्वतः स्फूर्त आंदोलन छेड़ा। वर्ष 1992 के सितम्बर और अक्टूबर माह में इस क्षेत्र की महिलाओं ने शराब माफियाओं के खिलाफ इंकलाब छेड़ दिया। इस आंदोलन ने ऐसा रूप धारण किया कि इसे राज्य में ताड़ी विरोधी आंदोलन के रूप में जाना जाने लगा।

आंदोलन का उदय

आंध्र प्रदेश के नेल्लौर जिले के एक दूर–दराज के गांव दुबरगंटा में 1990 के शुरूआती दौर में महिलाओं के बीच प्रौढ़ साक्षरता कार्यक्रम चलाया गया जिसमें महिलाओं ने बड़ी संख्या में पंजीकरण कराया। कक्षाओं में महिलाऐं घर के पुरूषों द्वारा देशी शराब, ताड़ी आदि पीने की शिकायतें करती थी। ग्रामीणों पुरूषों को शराब की गहरी लत लग चुकी थी इसके चलते वे शारीरिक व मानसिक रूप से कमजोर हो चुके थे। शराबखोरी से क्षेत्र की ग्रामीण अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हो रही थी, खराबखोरी के बढ़ने से कर्ज का बोझ बढ़ता जा रहा था। पुरूष अपने काम से गैर हाजिर रहने लगे। शराब के ठेकेदार मदिरा व्यापार पर एकाधिकार बनाये रखने के लिए अपराधों में व्यस्त थे। शराबखोरी से सबसे ज्यादा दिक्कत महिलाओं को हो रही थी। इससे परिवार की अर्थव्यवस्था चरमराने लगी। परिवार में तनाव और मारपीट का माहौल बनने लगा।

नेल्लौर में महिलाऐं ताड़ी की बिक्री के खिलाफ आगे आई और उन्होंने शराब की दुकानों को बंद कराने के लिए दबाव बनाना शुरू कर दिया। यह खबर तेजी से पूरे इलाके में फैल गयी और करीब 5000 गांवों की महिलाओं ने आंदोलन में भाग लेना शुरू कर दिया। प्रतिबंध संबंधी एक प्रस्ताव को पास कर इसे जिला कलेक्टर को भेजा गया। इस तरह के विरोध को देखते हुए नेल्लौर जिले में ताड़ी की नीलामी 17 बार रद्द हुई। नेल्लौर जिले का यह आंदोलन धीरे–धीरे पूरे राज्य में फैल गया।

आंदोलन के उद्देश्य

ताड़ी विरोधी आंदोलन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–
1– महिलाओं का शारीरिक व मानसिक शोषण रोकना।
2– पुरूषों में शराब की आदत छुड़ाना।
3– आर्थिक स्थिति में सुधार करना।
4– महिलाओं में शिक्षा का प्रचार–प्रसार करना।
5– बेरोजगारी को दूर करना।
6– राजनीति व अपराध के बीच के सम्बन्ध को समाप्त करना।
7– लैंगिक असमानता को दूर करना।

आंदोलन की कड़ियां

ताड़ी विरोधी आंदोलन का नारा था– ''ताड़ी की बिक्री बंद करो''। लेकिन इस साधारण नारे ने क्षेत्र के व्यापक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों तथा महिलाओं के जीवन को प्रभावित किया। ताड़ी व्यवसाय को लेकर अपराध और राजनीति के बीच एक गहरा नाता बन गया था।

राज्य सरकार को ताड़ी की बिक्री से काफी राजस्व की प्राप्ति होती थी इसलिए वह इस पर प्रतिबंध नहीं लगा रही थी। स्थानीय महिलाओं के समूहों ने इस जटिल मुद्दे को अपने आंदोलन में उठाना शुरू किया। वे घरेलू हिंसा के मुद्दे पर भी खुले तौर पर चर्चा करने लगी। आंदोलन ने पहली बार महिलाओं को घरेलू हिंसा जैसे निजी मुद्दों पर बोलने का मौका दिया।

इस तरह ताड़ी विरोधी आंदोलन महिला आंदोलन का एक हिस्सा बन गया। इससे पहले घरेलू हिंसा, दहेज प्रथा, कार्यस्थल एवं सार्वजनिक स्थानों पर यौन उत्पीड़न के खिलाफ काम करने वाले महिला समूह आमतौर पर शहरी मध्यमवर्गीय महिलाओं के बीच ही सक्रिय थे और यह बात पूरे देश पर भी लागू होती थी लेकिन धीरे–धीरे इस तरह के अभियानों ने महिलाओं के मुद्दों के प्रति समाज में व्यापक जागरूकता पैदा हुई।

भारत सरकार द्वारा महिलाओं की स्थिति को और सुदृढ़ करने के लिए भारतीय संविधान के 73 वें और 74वें संविधान संशोधन 1992–93 के अन्तर्गत स्थानीय निकायों में महिलाओं को आरक्षण की व्यवस्था भी की गयी है। इस प्रकार की व्यवस्था को राज्यों की विधानसभाओं तथा संसद में भी लागू करने की मांग की जा रही है। संसद में इस आशय का एक संशोधन विधेयक भी पेश किया जा चुका है।

नर्मदा बचाओ आंदोलन

नर्मदा नदी मध्य प्रदेश से निकलकर महाराष्ट्र और गुजरात में प्रवेश कर अरब सागर में गिरती है। भारत के मध्य भाग में स्थित नर्मना घाटी में विकास परियोजनाओं

के तहत मध्य प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र से गुजरने वाली नर्मदा और उसकी सहायक नदियों पर 30 बड़े, 135 मध्यम और 300 छोटे बांध बनाने का प्रस्ताव रखा गया है। गुजरात के सरदार सरोवर और मध्य प्रदेश के नर्मदा सागर बांध के रूप में दो सबसे बड़ी और बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं का निर्धारण किया गया है। नर्मदा के बचाव में 'नर्मदा बचाओ आंदोलन' चला। इस आंदोलन ने बांधों के निर्माण का विरोध किया। सरदार सरोवर परियोजना के अन्तर्गत एक बहु–उद्देश्यीय विशाल बांध बनाने का प्रस्ताव है।

बांध समर्थकों का कहना है कि इसके निर्माण से गुजरात के एक बहुत बड़े हिस्से सहित तीन पड़ोसी राज्यों में पीने के पानी, सिंचाई और बिजली के उत्पादन की सुविधा मुहैया कराई जा सकेगी जिससे कृषि की उपज में गुणात्मक वृद्धि होगी। बांध की उपयोगिता इस बात से भी जोड़कर देखी जा रही थी कि इससे बाढ़ और सूखे की आपदाओं पर अंकुश लगाया जा सकेगा। सरदार सरोवर बांध के निर्माण से सम्बन्धित राज्यों के गरीब 245 गांव डूब के क्षेत्र में आ रहे थे। अतः प्रभावित गांवों के करीब ढ़ाई लाख लोगों के पुनर्वास का मुद्दा सबसे पहले स्थानीय कार्यकर्ताओं ने उठाया। इन गतिविधियों को एक आंदोलन का रूप 1988–89 में मिला जब कई स्थानीय स्वयंसेवी संगठनों ने इसे नर्मदा बचाओं आंदोलन का रूप दिया। नर्मदा बचाओं आंदोलन से जुड़े प्रमुख व्यक्तियों में मेधा पाटेकर, बाबा आम्टे, सुन्दर लाल बहुगुणा आदि थे।

चर्चा में क्यों?

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अपने जन्म दिवस पर सरदार सरोवर बांध का उद्घाटन किया। उनके उद्घाटन करते ही मेधा पाटकर के नेतृत्व में 40 हजार परिवारों के हक की लड़ाई लड़ रहे नर्मदा बचाओं आंदोलन के कार्यकर्ताओं ने तीन दिनों से चले आ रहे जल सत्याग्रह को स्थगित कर दिया।

बांध के फायदे

1– प्रधानमंत्री ने नर्मदा नदी पर बनने वाली सरदार सरोवर बांध का लोकार्पण करते हुए कहा कि यह महत्वाकांक्षी परियोजना नए भारत के निर्माण में करोड़ों भारतीयों के लिए प्रेरणा का काम करेगी।
2– यह बांध आधुनिक इंजीनियरिंग विशेषज्ञों के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय होगा, साथ ही यह देश की ताकत का प्रतीक भी बनेगा।
3– इस बांध परियोजना से मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र के करोड़ों किसानों का भाग्य बदलेगा और कृषि और सिंचाई के लिए वरदान साबित होगा।
4– इस बांध की ऊँचाई को 138.68 मीटर तक बढ़ाया गया है ताकि बिजली उत्पन्न की जा सके।
5– गुजरात क्षेत्र में सिंचाई और जल संकट को देखते हुए नर्मदा नदी पर बांध की परिकल्पना की गई थी।

बांध के विरोध का कारण

1– भारत के चार राज्यों के लिए महत्वपूर्ण सरदार सरोवर परियोजना का नर्मदा बचाओ आंदोलन वर्ष 1985 से विरोध कर रहा है। आर्थिक और राजनीतिक विषयों के अलावा इस मुद्दे की कई परतें हैं, जिनमें इस क्षेत्र के गरीबों और आदिवासियों के पुनर्वास और वन भूमि का विषय प्रमुख मुद्दा है।
2– नर्मदा बचाओं आंदोलन द्वारा इस बांध के विरोध का प्रमुख कारण इसकी ऊँचाई है, जिससे इस क्षेत्र के हजारों हेक्टेयर वन भूमि के जलमग्न होने का खतरा है।
3– बताया जाता है कि जब भी इस बांध की ऊँचाई बढ़ाई गई है, तब हजारों लोगों को इसके आस–पास से विस्थापित होना पड़ा है तथा उनकी भूमि और आजीविका भी छिनी है।
4– इस बांध की ऊँचाई बढ़ाए जाने से मध्य प्रदेश के 192 गांव और एक नगर डूब क्षेत्र मे आ रहे हैं। इसके चलते 40 हजार परिवारों को अपने घर, गांव छोड़ने पड़ेंगे।
5– इस आंदोलन की नेता मेधा पाटेकर का आरोप है कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों के बावजूद भी बांध प्रभावितों को न तो मुआवजा दिया गया है और न ही उनका बेहतर पुनर्वास किया गया है। उसके बाजजूद बांध का जलस्तर बढ़ाया गया।
6– नर्मदा बचाओ आंदोलनकारियों की मांग थी कि जलस्तर को बढ़ने से रोका जाए तथा पहले पुनर्वास हो फिर उसके बाद विस्थापन।
7– आधिकारिक ऑकड़ों के अनुसार इस बांध के बनने से मध्य प्रदेश के चार जिलों के लगभग 23,614 परिवार प्रभावित हुए थे।

आगे की राह

आंदोलनकारियों की मांग है कि पुनर्वास पूरा होने तक सरदार सरोवर बांध में पानी का भराव रोका जाना चाहिये। यह भराव गुजरात के चुनाव में लाभ पाने के लिए मध्य प्रदेश के हजारों परिवारों की जिंदगी दांव पर लगाकर किया जा रहा है, जो दुर्भाग्यपूर्ण है।

ऐसी स्थिति को देखते हुए भारत सरकार और न्यायपालिका दोनों ही यह स्वीकार करते हैं कि इस प्रकार प्रभावित लोगों को पुनर्वास की सुविधा मिलनी चाहिए सरकार द्वारा 2003 में स्वीकृत राष्ट्रीय पुनर्वास नीति को नर्मदा बचाओ जैसे सामाजिक आंदोलन की उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है। आलोचकों का कहना है कि आंदोलन का अडियल रवैया विकास की प्रक्रिया, पानी की उपलब्धता और आर्थिक विकास में बांधा उत्पन्न कर रहा है। सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले में सरकार को बांध का काम आगे बढ़ाने की हिदायत दी है लेकिन साथ ही उसे यह भी आदेश दिया है कि प्रभावित लोगों का पुनर्वास सही ढ़ंग से किया जाए।

जन आंदोलन के सबक

जन आंदोलनों का इतिहास हमें लोकतांत्रिक राजनीति को बेहतर ढ़ंग से समझने में मदद देता है। इस तरह के गैर–दलीय आंदोलन अनियमित ढ़ंग से खड़े नहीं हो जाते।

सूचना का अधिकार अधिनियम

सूचना का अधिकार आंदोलन जन–आंदोलनों की सफलता का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। यह आंदोलन सरकार से एक बड़ी मांग को पूरा कराने में सफल रहा है। यह आंदोलन 1990 में प्रारम्भ हुआ और इसका नेतृत्व मजदूर किसान शक्ति संगठन ने किया था। राजस्थान में कार्यरत इस संगठन ने सरकार के समक्ष यह मांग रखी कि अकाल राहत कार्य और मजदूरों को दिये जाने वाला वेतन के रिकार्ड को सबके समक्ष रखा जाए। यह मांग राजस्थान के एक अत्यन्त पिछड़े क्षेत्र भीम तहसील में सबसे पहले उठाई गई। इस मांग के अन्तर्गत ग्रामीणों ने प्रशासन से अपने वेतन और भुगतान के बिल उपलब्ध कराने के लिए कहा। क्योंकि उनका कहना था कि उन्हें राहत राशि या वेतन, पारिश्रमिक का पूरा पैसा नहीं दिया जाता और उन्हें उनके वैध देय से वंचित रखा जाता है। उनका कहना था कि स्कूलों, अस्पतालों, छोटे बांध के निर्माण कार्यों तथा अन्य विकास कार्यों में धन का अत्यधिक घपला है और मजदूरों को पूरी मजदूरी नहीं मिलती है तथा फर्जी बिलों के माध्यम से भुगतान की गई राशि सरकारी कर्मचारियों ने अपनी जेब में डाल ली है। अतः उन्होंने बिलों के विवरण की भी सार्वजनिक जानकारी दिये जाने की मांग रखी। संगठन ने मजदूरों को जागृत किया और सरकार से मांग की कि सार्वजनिक सुनवाई भी की जाए। यह आंदोलन जनाधार पकड़ने लगा। संगठन ने 1994 में फिर 1996 में जन सुनवाई का आयोजन किया।

इस आंदोलन के दबाव में राजस्थान सरकार को पंचायती राज कानून में संशोधन करना पड़ा और यह व्यवस्था की गई कि पंचायतों को अपने बजट, खर्चों, लेखा, नीतियों और लाभ–हानि का विवरण सार्वजनिक करना अनिवार्य है। ये सूचनाएँ पंचायत के सूचना पटल तथा समाचार–पत्रों के माध्यम से सार्वजनिक रूप से घोषित की जानी अनिवार्य हुई।

इससे उत्साहित होकर सूचना के अधिकार की मांग राष्ट्रीय स्तर पर भी उठाई गई। कई संगठनों ने जनता के इस अधिकार को महत्वपूर्ण बताते हुए प्रशासन में पारदर्शिता लाने क लिए जनसाधारण के सशक्तिकरण के लिए इसकी मांग की। कंज्यूमर एज्यूकेशन एण्ड रिसर्च सेण्टर, भारतीय प्रेस परिषद् तथा शौरी समिति ने सूचना के अधिकार के बारे में एक प्रस्ताव तैयार किया था जिसके आधार पर 2002 में सूचना के अधिकार का कानून पास हुआ। परंतु इसे प्रभावकारी न माने जाने के कारण इसे लागू नहीं किया गया। सन् 2004 में लोकसभा का चुनाव हुआ और केन्द्र में सत्ता परिवर्तन हुआ। नई सरकार ने नए सिरे से सूचना के अधिकार का बिल संसद में प्रस्तुत किया। 2005 में इसे राष्ट्रपति से स्वीकृति मिली और उसे 12 अक्टूबर 2005 को लागू किया गया।

सूचना का अधिकार अधिनियम का अर्थ

भारत के सूचना के अधिकार अधिनियम, 2005 अनुच्छेद 2(जे0) के अनुसार सूचना के अधिकार का अर्थ पहुंच योग्य सूचना का जो किसी लोक प्राधिकारी द्वारा या उसके नियंत्रणाधीन धारित है, अधिकार अभिप्रेत है और जिसमें निम्नलिखित अधिकार शामिल हैं जैसे–

1– कार्यों, दस्तावेजों, अभिलेखों का निरीक्षण करना

2– दस्तावेजों या अभिलेखों की प्रमाणित प्रतिलिपियां लेना।

3– सामाग्री के प्रमाणित नमूने लेना।

4– यदि सूचना कम्प्यूटर या अन्य तरीके से रखी गयी है तो डिस्क, फ्लॉपी, टेप, वीडियो कैसेट या अन्य इलेक्ट्रानिक माध्यम या प्रिंट आउट के रूप में सूचना प्राप्त करना आदि।

सूचना के अधिकार अधिनियम 2005 के प्रमुख प्रावधान

1– नागरिकों द्वारा मांगी जाने वाली सूचनाएँ आवेदन के 30 दिन के भीतर(सूचना अधिकारी द्वारा) उपलब्ध कराई जायेगी। यदि सूचना किसी व्यक्ति के जीवन या स्वतंत्रता से सम्बन्धित है, तो उसे आवेदन के 48 घण्टे के भीतर प्राप्त किया जा सकता है।

2– सूचना प्राप्त करने के लिए निर्धारित शुल्क 10 रूपये नकद या ड्राफ्ट या चेक के साथ नियत प्राधिकारी के समक्ष आवेदन करना होगा।

3– प्रत्येक सरकारी विभाग में एक या अधिक लोक सूचना अधिकारी नियुक्त किए जाएँगें, जो लोगों से सूचना सम्बन्धी फार्म प्राप्त करेंगे व सूचनाएँ उपलब्ध कराएँगे।

4– आवेदक को सूचना प्राप्ति का कारण व व्यक्तिगत विवरण देना जरूरी नहीं होगा, केवल अपना नाम व पता ही देना होगा।

5– बिना कारण विलम्ब से सूचना देने वाले अधिकारी पर 250 रूपये प्रतिदिन तथा अधिकतम 25,000 रूपये तक जुर्माने का प्रावधान है।

6– अधिनियम में केन्द्रीय सूचना आयोग व राज्य सूचना आयोग के गठन का प्रावधान भी किया गया है।

क्या आप जानते हैं?

विश्व में सर्वप्रथम सूचना के अधिकार का कानून बनाने का श्रेय स्वीडन को जाता है, दूसरे शब्दों में अपने नागरिकों को सूचना का अधिकार प्रदान करने वाला प्रथम देश स्वीडन है। लगभग 246 वर्ष पहले ही स्वीडन की सरकार ने संविधान व कानून के जरिए अपने नागरिकों को सूचना की स्वतंत्रता प्रदान की थी। इस हेतु वर्ष 1766 में स्वीडन की सरकार ने 'प्रेस की स्वतंत्रता नामक कानून' बनाया था।

पिछड़े वर्ग से सम्बन्धी कुछ आयोग

संविधान के तहत 'पिछड़ा वर्ग' शब्द परिभाषित नहीं है। परंतु कतिपय अनुच्छेदों जैसे 15(4), 16(4) तथा 340 आदि के तहत इसके सम्बन्ध में कुछ विशेष प्रावधान किये गये हैं। प्रायः पिछड़े वर्ग के अन्तर्गत उन जातियों को शामिल किया जाता है जो सामाजिक एवं शैक्षणिक दोनों दृष्टि से पिछड़े हैं। इसका निर्धारण केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है। अनुच्छेद 340 के तहत राष्ट्रपति को पिछड़े वर्गों की दशाओं और कठिनाइयों का अन्वेषण कर उसके सुधार हेतु सिफारिश करने के लिए एक पिछड़ा वर्ग आयोग नियुक्त करने की शक्ति दी गई है। आयोग अपने को निर्देशित विषयों का अन्वेषण कर राष्ट्रपति को प्रतिवेदन सौंपता है जो उसे संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाता है। उल्लेखनीय है कि राष्ट्रपति द्वारा अब तक दो पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन किया है–

1– <u>काका कालेलकर आयोग</u>– 29 जनवरी, 1953 को काका कालेलकर की अध्यक्षता में काका कालेलकर आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने पिछड़े वर्गो की पहचान के लिए सामाजिक तथा शैक्षणिक मानदण्ड़ निर्धारित कर सरकारी सेवाओं में इनके लिए आरक्षण की सिफारिश की थी किन्तु सामाजिक तथा शैक्षणिक मानदण्ड स्पष्टतया परिभाषित न होने के कारण इस सिफारिश को अमान्य कर दिया गया।

2– <u>मण्डल आयोग</u>– 20 सितम्बर 1978 को वी0पी0मण्डल की अध्यक्षता में मण्डल आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने 31 दिसम्बर, 1980 को प्रस्तुत रिपोर्ट में सरकारी सेवाओं में पिछड़े वर्गों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की गयी थी, जिसे स्वीकार कर 8 सितम्बर 1993 से लागू किया गया है।

<u>पिछड़ा वर्ग आयोग के कार्य</u>

1– सामाजिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों की दशाओं तथा उनकी कठिनाइयों की जांच करना।
2– सामाजिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों की दशा को सुधारने के लिए राष्ट्रपति से उपायों की सिफारिश करना।
3– सामाजिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों की दशा को सुधारने के लिए अनुदान दिए जाने की सिफारिश करना।

<u>नेशनल फिश वर्कर्स फोरम</u>

मछुवारों की संख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में दूसरा स्थान है। 1990 के दशक में आर्थिक उदारीकरण की नीति प्रारम्भ हुई, देश के पूर्वी और पश्चिमी तटीय क्षेत्रों के मछुआरों ने सरकार की मछुआरे विरोधी नीतियों से बाध्य होकर अपना एक राष्ट्रीय मंच बनाया उसका नाम नेशनल फिश वर्कर्स फोरम (एन0एफ0एफ0) रखा गया।

केरल के मछुआरों ने व्यवसाय से जुड़े साथियों को एकत्र करने की मुख्य जिम्मेदारी सम्भाली। इसके अन्तर्गत दूसरे राज्यों की इस व्यवसाय से जुड़ी महिलाओं को भी अपने साथ संगठित करने का जिम्मा शामिल था। नेशनल फिश वर्कर्स फोरम ने 1997 में केन्द्र सरकार के साथ अपनी पहली कानूनी लड़ाई लड़ी और उसमें उसे सफलता मिली। इस क्रम में इसके कामकाज ने एक ठोस रूप भी ग्रहण किया।

एन0एफ0एफ0 की यह लड़ाई सरकार की एक विशिष्ठ नीति के विरूद्ध थी, केन्द्र सरकार की इस नीति के अन्तर्गत व्यवसायिक जहाजों को गहरे समुद्र में मछली मारने की इजाजत दी गई थी। इस नीति के कारण अब बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए भी इस क्षेत्र के दरवाजे खुल गये थे। 1990 के दशक में एन0एफ0एफ0 ने केन्द्र सरकार के साथ अनेक कानूनी लड़ाईयॉ लड़ी और सार्वजनिक संघर्ष किया। इस मंच ने उन लोगों के हितों की रक्षा के लिए प्रयास किये जो अपने जीवन–यापन के लिए मछली मारने के व्यवसाय से जुड़े थे न कि उनके जो इस क्षेत्र में केवल लाभ के लिए निवेश करते हैं। सन् 2002 में जुलाई में नेशनल फिश वर्कर्स फोरम ने एक राष्ट्रव्यापी हड़ताल की शुरूआत की। यह हड़ताल विदेशी कम्पनियों को सरकार द्वारा मछली मारने के लाइसेंस जारी करने के विरोध में की गई थी। नेशनल फिश वर्कर्स फोरम ने पारिस्थितिकी की रक्षा और मछुआरों के जीवन को बचाने के लिए विश्व भर के संगठनों के साथ हाथ मिलाया।

द्रविड़ आंदोलन

द्रविड़ आंदोलन भारत के क्षेत्रीय आंदोलनों में सबसे शक्तिशाली आंदोलन था। भारतीय राजनीति में यह आंदोलन क्षेत्रीयता वादी भावनाओं की सर्वप्रथम और सबसे प्रबल अभिव्यक्ति था। इस आंदोलन के नेता वर्ग के एक हिस्से की आकांक्षा एक स्वतंत्र द्रविड़ राष्ट्र बनाने की थी। पर आंदोलन ने कभी सशस्त्र संघर्ष की राह नहीं अपनाई। नेतृत्व ने अपनी मांग आगे बढ़ाने के लिए सार्वजनिक बहसों और चुनावी मंच का ही प्रयोग किया। द्रविड़ आंदोलन की बागडोर तमिल समाज सुधारक ई0वी0रामास्वामी नायकर (पेरियार उपनाम) के हाथों में थी। इस आंदोलन से एक राजनीतिक संगठन 'द्रविड़ कणगम' का जन्म हुआ। यह संगठन ब्राह्मणों के वर्चस्व का विरोध करता था तथा उत्तर भारत के राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक प्रभुत्व को नकारते हुए क्षेत्रीय गौरव की प्रतिष्ठा पर जोर देता था।

प्रारम्भ में द्रविड़ आंदोलन समग्र दक्षिण भारतीय संदर्भ में अपनी बात रखता था लेकिन अन्य दक्षिणी राज्यों से समर्थन न मिलने के कारण यह आंदोलन धीरे–धीरे तमिलनाडू तक ही सिमट कर रह गया। बाद में द्रविड़ कणगम दो भागों में बंट गया और आंदोलन की समूची राजनीतिक विरासत 'द्रविड़ मुनेत्र कड़गम' के पाले में केन्द्रित हो गई।

सन् 1953–54 की अवधि में डी0एम0के0 ने तीन सूत्री आंदोलन के साथ राजनीति में कदम रखा। आंदोलन की तीन मांगें थी–

1– कल्लाकुडी नामक रेलवे स्टेशन का नया नाम डालमियापुरम निरस्त किया जाए और स्टेशन का मूल नाम बहाल किया जाए। संगठन की यह मांग उत्तर भारतीय आर्थिक प्रतीकों के प्रति उसके विरोध को प्रकट करती थी।
2– स्कूली पाठ्यक्रम में तमिल संस्कृति के इतिहास को अधिक महत्व देने की थी तथा
3– तीसरी मांग राज्य सरकार के शिल्प कर्म शिक्षा कार्यक्रम को लेकर थी।

कालांतर में यह आंदोलन विभिन्न राजनीतिक दलों के संगठन के रूप में परिवर्तित हो गया।

महत्वपूर्ण प्रश्न–

अतिलघु प्रश्न–
प्रश्न 1– तिभागा आंदोलन क्या था?
प्रश्न 2– महिला सशक्तिकरण से क्या अभिप्राय है?
प्रश्न 3– ताड़ी विरोधी आंदोलन किस राज्य से संबंधित है?
प्रश्न 4– बी0 के0 यू0 का पूरा नाम लिखिए।
प्रश्न 5– चिपको आंदोलन क्या था?
प्रश्न 6– सूचना का अधिकार आंदोलन किस वर्ष प्रारम्भ हुआ था?
प्रश्न 7– नेशनल फिश वर्कर्स फोरम का गठन कहॉ हुआ?
प्रश्न 8– दलित पैंथर्स का गठन किस राज्य में हुआ?
प्रश्न 9– चिपको आंदोलन से जुड़े उत्तराखण्ड के प्रमुख पर्यावरणविदों के नाम लिखिए।
प्रश्न 10– नर्मदा बचाओ आंदोलन किसके नेतृत्व में हुआ?

लघु उत्तरीय प्रश्न–
प्रश्न 1– सरदार सरोवर योजना पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
प्रश्न 2– हरित क्रांति की शुरूआत कब हई? संक्षेप में विवरण दीजिये।
प्रश्न 3– महिलाओं की स्थिति में स्वतंत्रता के बाद क्या–क्या परिवर्तन आए हैं?
प्रश्न 4– जन आंदोलन पर टिप्पणी लिखिये।
प्रश्न 5– पंचायतों में महिलाओं के एक–तिहाई आरक्षण के पक्ष में तर्क दीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–
प्रश्न 1– द्रविड़ आंदोलन क्या था? इसके परिणाम क्या रहे?
प्रश्न 2– हरित क्रांति क्या थी? हरित क्रांति के एक सकारात्मक और एक नकारात्मक परिणामों का उल्लेख कीजिए।
प्रश्न 3– सूचना का अधिकार आंदोलन क्या है? संक्षेप में लिखिए।
प्रश्न 4– ब्रिटिशकालीन भारत में तथा स्वतंत्रता के बाद किसान आंदोलनों का वर्णन कीजिए।
प्रश्न 5– चिपको आंदोलन के विषय में आप क्या जानते हैं? संक्षेप में लिखिए।